Volume-1, No.2 Aug.-2014, pp.73-79

उच्च शिक्षा में अध्यापक उग्रवादः समस्या एवं समाधान

डा.सीमा रानी, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष शिक्षाशास्त्र विभाग,
डी. ए. के. कालिज, मुरादाबाद उ.प्र. भारत।
डा.वीरेन्द्र कुमार, असिस्टेन्ट प्रोफेसर शिक्षा विभाग
डी.पी.बी.एस.पी.जी. कालिज अनूपशहर बुलन्दशहर उ.प्र. भारत।

'डुडा हाय हाय'', ''डूडा प्रेसीडेंट हाय हाय'' ''श्रीराम डूडा प्रेसीडेंट'' होश में आओं। ये वे नारे थे जो दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र दिल्ली विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के कार्यालय के समक्ष लगा रहें थे। इस घटना को अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र हिन्दूस्तान टाईम्स ने 9 दिसम्बर 1998 को प्रकाशित किया था। दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र अध्यापकों के इस निर्णय का विरोध कर रहे थे कि शीतकालीन अवकाश के दौरान वे अध्यापन कार्य नहीं करेंगें जबकि ऐसा निर्णय प्रस्ताव कुलपति के समक्ष उन्होनें स्वमं ही तब किया था जब उनकी हडताल समाप्त हुई थी ताकि हडताल के बीच छात्रों की पढाई की जो हानि हुई थी उसकी क्षतिपूर्ति की जा सके। उसी दिन उक्त समाचार पत्र ने अलीगढ विश्वविद्यालय से सम्बन्धित भी एक समाचार प्रकाशित किया जिसमें कहा गया कि अलीगढ मुश्लिम विश्वविद्यालय जो कभी अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति का विश्वविद्यालय होता था आज उसकी हालत खराब हो गई है। पिछले तीन वर्षों से वहां बन्द, धरने, हडताले तथा तोडफोड की घटनाओं से त्रस्त हो गई है। पिछले तीन वर्षों में तीसरी बार अबकि विश्वविद्यालय को अनिश्चित काल के लिये बन्द किया गया है। तथा छात्रावासों को खाली कराया गया है। यह सब विश्वविद्यालयों में पहली बार नही घटा है।

1970 में दिल्ली विश्वविद्यालय के महाविद्यालयी अध्यापकों ने हडताल की थी और लगभग तीन महीने तक अध्यापन कार्य स्थागित रहा था। 1983 में दिल्ली विश्वविद्यालय के महाविद्यालयी अध्यापकों ने हडताल की थी और लगभग तीन महीने तक अध्यापन कार्य स्थागित रहा था। 1983 में जे. डी. सेठी ने अपनी पुस्तक (1) में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की बिगडती हालत का विस्तार से खुलासा किया था। उन्होनें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयों के विषय में लिखा था कि वह विश्वविद्यालय अध्यापकों की राजनीति का अड्डा बन गया है। अध्यापकों के उग्रवादी क्रिया कलापों का उल्लेख मेंसूर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर वेंकटययया ने भी लिखा है। उन्होने लिखा था (2) कि ऐसी अनेक धटनायें हुई है जिनमें विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के अध्यापकों ने परीक्षा का बहिष्कार, हडताले आदि की है। जे.डी. सेठ की पुस्तक ने जो 1983 में प्रकाशित हुई देश के अनेक विश्वविद्यालयों में घटी अध्यापकों की उग्रवादी घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है। खेद का विषय है कि उस पर किसी विद्वान, प्रशासक अथवा व्यवस्था से जुडे व्यक्ति ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही की, उससे संकेत लेकर उच्च शिक्षा में सुधार के प्रयास का तो प्रश्न ही नही उठता। कटु सत्य यह है कि आज अध्यापक उग्रवाद विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के जीवन का एक स्थायी अंग बन गया है। देश की सभी उच्च शिक्षा संस्थायें अध्यापकों के आन्दोलनों से अक्रान्त है। अनेकों विश्वविद्यालयों में उनकी तोड फोड की घटनाओं से महीनों तक अध्ययन–अध्यापन का कार्य स्थगित रहता है। भारतीय उच्च शिक्षा तन्त्र को अध्यापकों के उग्रवाद से बहुत अधिक हानि हुई है। अध्यापकों में विद्वत–विरोधी एवं संस्था–विरोधी प्रवृत्तियां पढी है। अध्ययन–अध्यापन में रूचि का ह्रास हुआ है। यू.जी.सी. की एक रिर्पोट (3) के अनुसार शायद ही कोई ऐसा सप्ताह होता हो जब दैनिक समाचार पत्र में विश्वविद्यालय सम्बन्धी अशान्ति का समाचार न छपता हो। विश्वविद्यालय में तालाबन्दी, हडताल, घिराव प्रायः यहीं शीर्षक रहते है। इसके कारण विश्वविद्यालय का अध्ययन–अध्यापन का वातावरण असन्तोषजनक बना रहता है। बहुत से अध्यापक कक्षायें नियमित रूप से नही पढाते, शोध–छात्रों का मार्ग दर्शन नही करते तथा जीर्णशीर्ण पाठ्यक्रम पढाते रहते है। कुछ अध्यापक छात्र आन्दोलनों के पीछे भी रहते है, यदि किसी भी वर्ग द्वारा विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालय में तोड–फोड होती है, काम काज बन्द रहता है, अशान्ति उत्पन्न होती है तो उसके परिणाम भंयकर होते है। यदि केवल धन

हानि को ही लें तो यह करोडों रूपये का नुकसान बैठता है। संस्था की सम्पत्ति की तोड–फोड के द्वारा उत्पन्न हानि, सैकडों पुलिस कर्मियों, अधिकारियों एवं प्रशासकों के अतिरिक्त समय कार्य करने का खर्च आदि सब का हिसाब लगाया जाये तो निस्सन्देह स्वीकार करना पडेगा कि अध्यापक उग्रवाद एक गरीब देश के कर–दाताओं के धन की आपराधिक बरबादी का कारण है। और जो हानि मानवीय सम्पदा की विकृति के रूप में होती है उसकी क्षतिपूर्ति तो सम्भव ही नही है, जब हडतालें, तोड–फोड भौंडे नारों एवं अवांछनीय व्यवहारों, भाषणों की घटनायें घटती है तो उनसे उन अध्यापकों के मन पर बहुत दबाव पडता है जो इन सबकों पसंद नही करते है। छात्रों के जीवन–मूल्यों पर भी इनका दुष्प्रभाव पडता है। लगातार ऐसा घटित होते रहने पर उन सभी के मन में कुण्ठायें उत्पन्न हो जाती है और मानव संसाधन जो देश एवं समाज की प्रगति, सुख समृद्वि के आधार होते है, नकारा हो जाते है। कैसी विडम्बना है कि जब किसी विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालय में हडताल होती है तो उस का सबसे प्रथम शिकार विद्यार्थी होते हैं। नुकसान उनका होता है परन्तु अध्यापकों को उस का वेतन पूरा मिलता है। विद्यार्थियों से शुल्क उस काल का भी लिया जाता है। अध्यापक उसका दोहरा लाभ उठाते है। अध्यापन कार्य से मुक्ति मिल जाती है और उस समय का उपयोग वे टयूशन करने, अतिरिक्त धन कमाने तथा अपने अनेकों व्यक्गित कार्यों को पूरा करने में करते है। कुछ तो पिकनिक आदि पर जाकर मौज मस्ती करते है। यह स्वयं में लज्जास्पद है। अध्यापकीय व्यवसाय का कोढ है। स्वतन्त्रता का भयानक दुरूपयोग है। इस सब के होते छात्रों के समक्ष अवांछनीय उदाहरण प्रस्तुत होते हैं तथा मानवीय गरिमा भी प्रभावित होती है। मानवीय गुणवत्ता अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यदि समाज की किसी भी गतिविधि द्वारा मानवीय गुणवत्ता पर कुठाराघात होता है तो उसे समाज विरोधी समझा जाना चाहिए क्योंकि उससे समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था कुप्रभावित होती है। इस सन्दर्भ में जिज्ञासु मन में दो कठिन प्रश्न उभरते हैः– प्रथम–इस समस्या का उद्गम कहां से होता है? और द्वितीय–उनका समाधान क्या हो सकता है? दूसरें शब्दों में क्या अध्यापक उग्रवाद के मानसगति–शास्त्र की व्याख्या सम्भव है तथा उसके बढते कदम रोके जा सकते है? लेखिका का मानना है कि समस्या का उद्गम और समाधान एक ही सन्दर्भ प्रस्तुत करता है और वह सन्दर्भ है सामाजिक–राजनैतिक परिप्रेक्ष्य। उसे अस्तित्वविहीन नहीं किया जा सकता। अतः आवश्यकता उसके स्वरूप को समझकर उससे वस्तुनिष्ठ एवं वांछनीय उपायों से निबटने की है।

अध्यापकों की हडतालें, उनके प्रदर्शन, घिराव, धरने, तोड–फोड, छात्रों को भडकाना, शिक्षा–संस्थाओं की तालाबन्दी, आदि उनके उग्रवाद के विभिन्न रूप हैं। शब्द हडताल तो पुराना, परिचित और आम है। परन्तु ''उग्रवाद'' उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की देन है। अध्यापकों का उग्रवाद तो भारत में 1970 के पश्चात् ही उपजा है। अमेंरिका में इसका जन्म 1960 के दशक में ही हो चुका था। कोर्बिन (4) अध्यापकों के उग्रवाद को सामाजिक संस्थाओं की असफलता का परिचायक मानता था। इस लेखक का यह मानना है कि अध्यापक उग्रवाद के कारणभूत तत्व एक नही बल्कि कई है। भारत में अध्यापक उग्रवाद का जन्म अध्यापक–संघों के माध्यम से हुआ जो आरम्भ में केवल बौद्विक गतिविधियों को लेकर चले और फिर धीरे–धीरे शक्ति एवं सत्ता के साधक बनते गये। अन्ततोगत्वा उनका ध्येय केवल अपनी मांगों की पूर्ति कराने तक आकर सीमित हो गया ऐसी मांगे जैसे वेतनमानों का पुनरीक्षण, मानदेयों में वृद्वि, परीक्षाओं की तिथियों में परिवर्तन पदोन्नतियां सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन, मूल्यांकन सम्बन्धी विश्वविद्यालयों के निर्णयों में परिवर्तन, परीक्षकों की नियुक्तियां, प्राचार्यों की नीतियों एवं निर्णयों के प्रति विरोध, कार्यकाल के घण्टों में कमी , कक्षाओं को सीमित कराना, नये कालिजों का खोलना, विश्वविद्यालय की स्थापना, विश्वविद्यालय की समितियों में भागीदारी निश्चित करना, विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के निर्णयों में भागीदारी आदि। ऐसा नही है कि सभी मांगे उचित अथवा सभी अनुचित होती है। कुछ मागें उचित भी होती है। फिर उचित –अनुचित का निर्णय बहुत कुछ पक्षकारों के अपने दृष्टिकोण एवं दर्शन पर भी निर्भर करता है। यहां उचित–अनुचित का विचार महत्वपूर्ण नहीं है। चर्चा का विषय है अध्यापक–उग्रवाद से समन्धित तत्व एवं परिस्थितियां, अमेंरिका में शोध के माध्यम से ऐसे बहुत से तत्वों का पता लगाने का प्रयास किया गया जिनका सम्बन्ध अध्यापक उग्रवाद से हो सकता था। प्रशासन का स्वरूप, कार्य सम्बन्धी परिस्थितियां, संस्थागत ढांचा, यूनियनवादिता, उम्र अनुभव, लिंग आदि कितने ही चरों का अध्ययन किया

गया तथा यह जानने का प्रयास किया गया कि इनमें से कौन तत्व अध्यापक उग्रवाद को सार्थकरूप से प्रभावित करते हैं। भारत में इस प्रकार के अध्ययन नही हुए हैं। केवल दो अध्ययन (5,6) ही इस लेखिका को उपब्लध हो सकें जिनमें अध्यापक उग्रवाद का अध्ययन किया गया था जबकि भारत में अध्यापक उग्रवाद की समस्या बहुत गम्भीर है। एक अध्ययन (9) स्वमं इस लेखिका द्वारा 1996 में किया गया था जिसमें यह जानने का प्रयास किया गया था कि देश की सामाजिक –राजनीतिक परिस्थिति को कहां तक अध्यापक उग्रवाद को प्रभावित करती है। इस अध्ययन का एक निष्कर्ष यह निकला था कि महिला अध्यापकों की तुलना में पुरूष अध्यापक अधिक उग्रवादी होते हैं। यह भी पाया गया था कि अध्यापक उग्रवाद बदली हुई सामाजिक–राजनैतिक परिस्थितियों का परिणाम है। अधिकतर अध्यापकों की यह मान्यता थी कि सामाजिक–राजनैतिक वातावरण अत्यधिक प्रदूषित हो गये। फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकला कि अध्यापक–उग्रवाद एवं प्रदूषित सामाजिक–राजनैतिक पर्यावरण के बीच अभिन्न सम्बन्ध है। यह तथ्य तर्कपूर्ण प्रतीत होता है क्योंकि व्यक्ति एवं पर्यावरण के बीच जो अन्तर्क्रिया होती है उसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर निश्चित रूप से पडता है। यह क्रिया अबाधरूप से सतत चलती रहती है। जो शक्तियां वाह्य परिवेश में प्रबल होती है उनका सशक्त प्रहार व्यक्ति के मन–मस्तिष्क पर होता रहता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति जाने अनजाने परिवेश की परिस्थियों के अनुकूल ढलता जाता है। उग्रवाद कोई जन्मजात विशेषता नही होती। उसका जन्म सामाजिक भूमि में ही होता है। मनुष्य वहीं सब कुछ सीखता है जो उसके परिवेश में उसे सन्तुलित ,सुखी, महत्वपूर्ण, प्रभावशाली होने का अहसास कराता है चाहे वा वांछनीय हो अथवा अवांछनीय मनोविज्ञान का एक अति शक्तिशाली सिद्वान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति वही व्यवहार गृहण एवं विकसित करता है जो समाज में प्रस्तुत होते है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के अध्यापकों का उग्रवाद भी, यद्यपि वह अवांछनीय है, उसी सब का परिणाम है जो अध्यापकों के चारों और समाज में घटा है, घट रहा है।

अध्यापक उग्रवाद एक प्रकार का व्यवहार है, परिवेश की किसी परिस्थिति के प्रति विद्रोह, विरोध का एक रूप है, परिवेश–नियन्त्रित जीवन का एक विशिष्ट पक्ष। मनोविज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो अध्यापक–उग्रवाद वातावरण की उस परिस्थिति के प्रति एक बर्हिमुखी आक्रोश मात्र होता है जो अध्यापकों में हताशा, निराशा आन्तरिक आघात उत्पन्न करती है। उस अभ्यान्तरिक आक्रोश का वाह्यरूप ही उग्रवाद अथवा संघर्षवाद होता है। दूसरे शब्दों में एक सुखद कष्टप्रद परिस्थिति में सन्तुलन साधन का एक रूप होता है। जब कोई वाह्य परिस्थिति किसी व्यक्ति के अहं को असहनीय होती है तो वह उससे मुक्ति पाने के उपाय खोजने का प्रयास करता है। अहं के प्रतिक्षरूपी ये विभिन्न उपाय उसके सन्तुलन को सुलभ बनाते हैं। अपनाया हुआ मार्ग उसके भीतर के आक्रोश को, निराशा को, कष्ट को कुछ समय के लिये कम करने की भूमिका निभाता है। प्रायः ये मार्ग दो प्रकार के होते है। एक तो यह कि व्यक्ति उस निराशाजनक परिस्थिति से अपने को बिल्कुल अलग कर लेता है और दूसरा यह कि वह उस परिस्थिति से लडता हैं, उसे मिटा देने, बदलने के लिये संघर्ष करता है। बस सन्तुलन के प्रयास का यह संघर्षात्मक रूप ही अध्यापकों का उग्रवाद है। कुछ अध्यापक जब किसी व्यवसाय सम्बन्धी परिस्थिति से सन्तुष्ट नही होते तो उसे बदलने का प्रयास करते हैं। या फिर कुछ ओर पाने के प्रयास स्वरूप संघर्ष करते हैं। इन संघर्षात्मक व्यावहारों के फलस्वरूप उन्हें यदि मनचाहा प्राप्त हो जाता है, अर्थात उनका संघर्षात्मक आन्दोलन सफल हो जाता है तो उनके ये पुरस्कृत व्यवहार सुदृढ हो जाते हैं। बार–बार ऐसा होने पर वे स्थायी होकर उनके व्यवसायिक जीवन के अंग बन जाते है। हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में उग्रवाद प्रत्येक संगठन का एक कठोर सत्य बन चुका है। वह स्पष्ट एवं निश्चित संस्थागत व्यवहारों का रूप ले चुका है।

अध्यापक अपने परिवेश का अभिन्न अंग होता है। उसे अपने परिवेश से विलग नहीं किया जा सकता। उनके इस परिवेश की भी कई पर्तें होती है जो एक दूसरे से प्रभावित होती रहती है, यथा कक्षा में व्याप्त परिवेश, सम्पूर्ण संस्थागत परिवेश और इन सब से ऊपर समाज में व्याप्त परिवेश। जो कुछ समाज में व्याप्त है वह संस्थागत परिवेश को और जो कुछ संस्था में व्याप्त है वह कक्षा में परिवेश एवं अध्यापक एवं अध्यापक दोनों को प्रभावित करता है। साथ ही जो प्रभाव इनसे उत्पन्न होते है उनसे पुनः समाज भी प्रभावित होता है। इन प्रभावों से अछूता रहना बहुत कठिन होता है। कोई विरला अध्यापक ही ऐसा करने में समर्थ हो पाता है। अधिकतर को उसी धारा में बहने की बाध्यता बन जाती है उनका दबाव अध्यापकों के मन मस्तिष्क पर अपरिहार्य रूप से पडता है। वह दबाव उन्हें तद्नुरूप बदलने के लिये विवश करता रहता है। वाह्य परिवेश के अनुरूप ढलने की यह सबल आन्तरिक मांग अध्यापकों की विवशता होती है जो उनके व्यवहारों में अभिव्यक्त होकर अनेक रूप ग्रहण करती है। जिस

प्रकार के व्यवहारों से उस मांग की पूर्ति होती है उसी प्रकार के व्यवहारों को अपनाना अध्यापकों के लिये महत्वपूर्ण हो जाता है। यदि किसी समाज व्यवस्था में पदों पर नियुक्तियों योग्यता से न जुडकर भ्रष्टाचार से जुड जाती है तो अध्यापक हो अथवा अन्य कोई वह भ्रष्टाचार के शिकंजें से बहुत दिन तक स्वयं को नही बचा सकता। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यक्ति एवं समाज के बीच सामंजस्य होना अत्यन्त आवश्यक होता है। व्यक्ति स्वाभाविक रूप से इस दिशा में प्रयत्न करने को प्रेरित होता है। यदि अनुचित व्यवहार द्वारा उसका यह लक्ष्य पूरा होता है तो वह उसी प्रकार का व्यवहार अपनाता है। अच्छा जीवन जीने की इच्छा और उसके लिये धन, मकान, वाहन, अन्य सुख सुविधायें जुटाने की तीव्र इच्छा सभी में होती है। यदि समाज की व्यवस्था में ये सब व्यक्ति को भ्रष्टाचार के माध्यम से प्राप्त होता है तो वह व्यक्ति भ्रष्टाचार को गले लगाता है। यदि समाज की व्यवस्था में सदाचार शिखर पर रहता है और मकान–दुकान, धन–दौलत को महत्वहीन समझा जाता है तो व्यक्ति सदाचार के नशे में सुख–शान्ति पाने की इच्छा करने लगता है। ऐसे अनेक महापुरूषों के उदाहरण हमारे देश में मिलते है। इस मनोवैज्ञानिक विशलेषण के सन्दर्भ में इस बात को सरलतापूर्वक समझा जो सकता है कि भारत में अध्यापकों के उग्रवाद का जन्म कब और किस प्रकार हुआ तथा उसके समाधान की सम्भावना किस प्रकार हो सकती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जब देश में राजनैतिक बदलाव आया तो सामाजिक प्रक्रियाओं में भी दिशा–परिवर्तन हुये। समाज की संस्थाओं में भी बदलाव आये। शिक्षा के क्षेत्र में जो नीतियां बनी उनके फलस्वरूप क्रांतिकारी परिवर्तन हुये, विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्रों की भीड बढती गई। उच्च शिक्षा का ढांचा तो पूर्ववत् रहा परन्तु उसका उपयोग करने वालों की संख्या निर्बाध रूप बढती रही। शिक्षा तन्त्र भीड तन्त्र के रूप में बदल गया। भीड में एक दूसरे को कोहनी मारकर आगे निकलने वालों की संख्या भी बढने लगी। दूसरी ओर नेहरू युग की समाप्ति के बाद सरकारों का स्थायित्व समाप्त हो गया, राजनैतिक दलों में अपने दल की सरकार बनाने और सत्ता हथियाने की होड लगने लगी। जो भी दल सत्ता में आया उसने अपना वर्चस्व एवं अपना वोट बैंक सुनिश्चित करने की लालसा से अपने–अपने लोगों को व्यवस्था के शिखरों, महत्वपूर्ण केन्द्रों–कोनों पर नियुक्त किया। विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, कुलसचिवों से लेकर महाविद्यालयों के प्राचार्यों प्रवक्ताओं तक की नियुक्तियों में अनेक प्रकार के घोटाले, अनियमितताओं, पक्षपात, भ्रष्टाचार हुये। यहां तक कि इन नियुक्तियों में कई स्थानों पर पैसे का भी हस्तान्तरण खुले तौर पर हुआ और यह सब मन्त्रियों की जानकारी एवं उनके स्तर पर भी हुआ बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि वे सब उसमें जो हो रहा था भागीदार थे। सभी दलों की सरकारों ने ये प्रयास किये कि उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक बिन्दू पर उन के दल से जुडे, उनकी नीतियों से जुडे, अपने लोग नियुक्त हो गये। राजनैतिक दलों के निचले स्तर के नेताओं की सिफारिशें उनके दबाव नियुक्तियों में रंग लाने लगे। ऐसे अनेक उदाहरण है जिनमें देश की इस प्रकार के सामाजिक–राजनैतिक प्रदूषण की तस्वीर स्पष्ट दिखाई देती है। बहुत से लेखकों ने इसका पर्दाफाश भी किया है। दिल्ली विश्वविद्यालय तो इस प्रकार की राजनैतिक घुसपैठ का एक ज्वलंत उदाहरण है। इसका सारा चिट्ठा जौन एवं मालविका काल (7) ने अपने लेख में किया है। सेठी की पुस्तक में भी इसकी विस्तृत जानकारी दी गई है। भटनागर (8) ने भी अपनी शोध–आख्या में इसका उल्लेख किया है। सारांशतः अध्यापक का सम्पूर्ण सामाजिक राजनैतिक परिवेश जिस वैचारिक सांचे में आकर सिमट गया है, उसमें प्रत्येक अध्यापक को यह संदेश मिल रहा है कि कुलपति से लेकर चपरासी तक के पद पर नियुक्ति दिलाने की क्षमता व्यक्ति की योग्यता, उसके शैक्षिक योगदान, उसके गुणों में नही बल्कि सत्तारूढ राजनैतिक दल के नेताओं, मंत्रियों एवं नेताओं में निहित है। और अपनी इस क्षमता का प्रयोग वे धन, जाति, क्षेत्रीयता, दलीय सम्बद्वता, धर्म आदि के साथ जोडकर करते हैं। भ्रष्टचार के इस सरकारीकरण का भयानक परिणाम यह हुआ कि समस्त अध्यापक वर्ग की मानसिकता में आमूल चूल परिवर्तन होता गया। आज का अध्यापक पढने–पढाने, अपने उत्तरदायित्व से पूर्णतया कट गया है। और जिस कडी से अभिन्न रूप से न चाहते हुये भी जा जुडा है वह है वेतन, धनोपार्जन, मौज–मस्ती। वह सोचता है जब देश के कर्णधारों को देश की, समाज की चिंता नही तो में ही क्यों खटूं, मरूं देश के, समाज के लिये। जिस प्रकार की सामाजिक–राजनैतिक परिस्थितियां हैं देश में उनमें इस प्रकार की मानसिकता पनपना बहुत स्वाभाविक है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुरूप है। समाज में, विशेष रूप से लोकतांत्रिक व्यवस्था में परिवर्तन नीचे से ऊपर कभी नही जाता। वह सदैव ऊपर से नीचे की ओर चलता है। ऊपरी स्तर पर नेता अथवा प्रभावशाली व्यक्ति जिस प्रकार के आदर्श प्रस्तुत करते हैं नीचे के लोग उन्हीं का जाने–अनजाने अनुसरण करते हैं। समाजशास्त्री दुर्खीम ने बहुत बल देकर कहा था कि

समाज शिक्षा को बदलता है शिक्षा समाज को नही बदलती।

सरकार की गलत नीतियां एवं उपरोक्त भ्रष्टाचार का एक भयानक परिणाम यह भी हुआ है विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अक्षम, अयोग्य एवं नाकारा अध्यापकों एवं छात्रों की अवांछनीय एवं आभातीत वृद्वि हुई है। पिछले दो दशकों में जो अध्यापक नियुक्त हुये है उनमें से अनेक ऐसे है जो पढा ही नही सकते है। इसलिये वे कक्षाओं में जाने और छात्रों का सामना करने से कतराते है। कुछ तो ऐसे है जो हाईस्कूल व इन्टर कक्षाओं को भी नही पढा सकते है। जब वे कक्षाओं में नही जाते तो दूसरे अध्यापक भी सोचते है कि वह ही क्यों अपनी जान खपायें। विभागाध्यक्ष, प्राचार्य, कुलपति, कुलसचिव आदि उनका कुछ बिगाड नही सकते। नियन्त्रण के सारे केन्द्र निष्क्रिय हो चुके हैं। अध्यापकों को पूर्ण स्वतन्त्रता है वह जो चाहे करें, जब चाहे तब आयें, जो चाहे पढाये, पढाये चाहे न पढाये। अधिकतर शिक्षा संस्थाओं में इसी प्रकार का वातावरण है। ऐसे वातावरण में अपने अहं को सुरक्षित रखने तथा अपने अस्तित्व का दूसरे को अहसास कराने की इच्छा को पूरा करने का एक मात्र माध्यम इन अध्यापकों के लिय उग्रवाद रह जाता है। जो सन्तुष्टि, आत्मसुख अध्ययन–अध्यापन से प्राप्त होता और जो सम्भव नही हुआ उसे वे उग्रवाद से पाने का प्रयास करते है। शिक्षक–नेता के रूप में उभर कर उन्हें उस सुख की अनुभूति होती है जो एक योग्य अध्यापक को सफल एवं प्रभावी अध्यापन के बाद होती है। यह मनोविज्ञानिक सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि उसे अन्य लोग महत्वपूर्ण, सम्माननीय एवं प्रभावशाली समझें। उग्रवाद से जुडने पर उनकी इस इच्छा की पूर्ति हो जाती है। लेखिका के पूर्वोक्त शोध (9) का एक निष्कर्ष यह भी था कि अन्य अध्यापकों की अपेक्षा उन अध्यापकों में उग्रवाद का स्तर सार्थक रूप से ऊंचा था जो अध्यापक संघों के आधिकारिक पदों से जूडे थे।

अध्यापकों के उग्रवाद के तन्तु छात्रों के उग्रवाद से भी जुडे प्रतीत होते हैं। जब छात्रों का आक्रोश, उनकी आक्रामकता एवं संघर्षवाद बढा तो विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का वातावरण भी बदल गया। अध्ययन–अध्यापन एवं ज्ञानार्जन के प्रति छात्रों एवं अध्यापकों दोनों का ही दृष्टिकोण बदल गया। शैक्षिक मान्यतायें महत्वहीन हो गई। इस अंधड में परीक्षायें मखौल बनाकर रह गयी। अध्यापक एवं छात्र दोनों परीक्षा सम्बन्धी घोटालों में लिप्त हो गये। परीक्षाओं में अनुचित साधनों के प्रयोग के भरोसे छात्रों ने कक्षाओं में आना ही छोड दिया। अध्यापकों ने इसे सौभाग्य मान लिया। उन्हें भी कक्षा में न जाने का बहाना मिला। इस प्रकार शिक्षा संस्थाओं का सम्पूर्ण वातावरण प्रदूषणग्रस्त हो गया। छात्रों द्वारा अध्यापकों को पीटा जाना, नकल कराने के लिये उन्हें विवश करना, प्रवेश सम्बन्धी घोटाले एवं अनियमिततायें हेतू दबाव बनाना, किसी नियम, निर्णय का पालन न करना, परिसर में मारपीट, चाकू छूरे चलाना, हत्या आदि की घटनाओं से संस्थाओं का पूरा वातावरण विशाक्त हो गया। ऐसी परिस्थिति में अध्यापकों का रहा सहा मनोबल भी छिन्न–भिन्न हो गया। किसी निष्ठावान अध्यापक ने पढाना भी चाहा तो कक्षा में छात्रों की अनुपस्थिति, उनमें वांछनीय अभाव व्यवहारों , अध्ययन में रूचि एवं प्रेरणा के अभाव तथा साथियों की टांग खिंचाई ने निराशा एवं विवशता के गर्त में ढकेल दिया। अन्त में इन अध्यापकों ने भी उग्रवाद की राह पकड ली। वहां मिली उन्हें परिस्थितिजन्य तनाव से मुक्ति और अन्य अध्यापकों से बल, सहारा। परिस्थिति उनके लिये सुलभ हो गई। इस प्रकार जन्मा, विकसित हुआ और पनपा अध्यापक उग्रवाद।

अध्यापक–उग्रवाद का जन्म यदि सामाजिक– राजनैतिक परिवेश में हुआ है तो उस समस्या का समाधान भी इसी संदर्भ में सम्भव होगा। अन्यत्र किसी भी क्षेत्र में इस समस्या का हल नही खोजा जा सकता। यदि समाधान सम्बन्धी सोच इस बिन्दू पर आकर टिकती है कि अध्यापकों के वेतन, सुख–सुविधाओं में वृद्वि करके उसका हल खोजा जा सकता है तो यह नितांत निष्प्रभावी होगा। अनुभव यह बताता है कि पिछले दशकों में इस प्रकार के परिवर्तनो का अध्यापकों की कार्य–शैली, उनके व्यवहारों पर कोई प्रभाव नही पडा है। बल्कि सच तो यह है कि अध्यापक जितना अधिक सुरक्षित, सुविधा सम्पन्न हुआ है वह उतना ही अपने उत्तरदायित्व से विमुख हुआ है। आवश्यकता उस परिवेश को बदलने की है जो उस पर हावी है। माहाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में जो घट रहा है वह सब वहीं तो है जो देश के सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में घट रहा है। जब कोई चोर यह कहता है कि चोरी करना पाप है तो उसका अन्य लोगों पर कोई प्रभाव नही होता। यदि लक्ष्य यह है कि लोग चोरी न करें तो यह बात उनकों कहनी होगी जो स्वयं इमानदार हैं। हमारे समाज में यही हो रहा है कि जो चोर है वही चीख रहे है कि चोरी करना पाप है। तो सब यही सीख रहे हैं कि कहो कुछ और करो कुछ और। जो नेता जीवन–मूल्यों की दुहाई दे रहे हैं वहीं देखा जा रहा है, जीवन मूल्यों के सब से बडे हत्यारे है। तो स्थिति कैसे सुधरे। वस्तुनिष्ठ चिंतन के आधार पर समाधान के

सुझाव स्वरूप में बलपूर्वक कहना चाहूंगी कि समाज की इस वस्तुस्थिति को सर्व प्रथम बदलना होगा। यह प्रायः कहा जाता है कि लोकतन्त्र में यह सम्भव नही है। तो मानना होगा कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी कोई सार्थक परिवर्तन सम्भव नही होगा हमें उसके विषय में भी सोचना बन्द कर देना चाहिए। मेंरा मानना है कि यदि राजनीति से जुडे नेता संकल्प लें तो यह सम्भव हो सकता है वे अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर नीतियों का निर्धारण शिक्षाविदों को सौंप दें तथा उनके क्रियान्वयन में कोई रोढा अटकाता है तो उसके खिलाफ कडी कार्यवाही करें। नियन्त्रण स्वतन्त्रता विरोधी नही उसका पोषक होता है। देश की दुर्दशा का एक कारण यह भी है कि नियन्त्रण के सारे केन्द्र निष्क्रिय हो गये हैं ओर इसका कारण राजनैतिक दलों के आपसी विरोध है। यदि सत्तारूढ दल एक निर्णय लेता है तो दूसरे विपक्षी दल उसका विरोध करते हैं। इसका एक उदाहरण उत्तर–प्रदेश से प्राप्त होता है। प्रदेश की सरकार ने नकल विरोधी अध्यादेश जारी किया तो एक विपक्षी दल ने उसका विरोध किया। परिणामतः उस अध्यादेश का कोई प्रभाव नही हुआ तथा अध्यापकों का मनोबल और भी गिर गया। जब तक राजनैतिक दल एक स्वरूप आचार संहिता बनाकर उसका पालन नही करते तब तक स्थिति में कुछ भी करने पर कोई सुधार नही हो सकता।

विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सभी नियुक्तियां निष्पक्ष और केवल योग्यता के आधार पर होनी चाहिये। जब तक नियुक्यिों में राजनैतिक घुसपैठ बनी रहेगी तब तक योग्य अध्यापकों के चयन नही हो पायेगें जब से राज्यों में उच्च शिक्षा सेवा चयन आयोग बने है। तब से नियुक्तियों में भ्रष्टाचार एवं धांधलेबाजी चर्मसीमा पर पहुंच गई है। इस दिशा में यू.जी.सी. ने नेट–परीक्षा का आरम्भ करके एक सराहनीय कार्य किया था। परन्तु कुछ राज्यों ने अपने स्तर पर उस परीक्षा का आयोजन करके उस प्रयोग को भी असफल कर दिया। चयन एवं नियुक्तियों का उत्तरदायित्व जाने माने शिक्षाविदों को सौंपना चाहिये न कि मन्त्रियों एवं उनके चहेतों को। मन्त्रियों के वर्चस्व एवं हस्तक्षेप की यह परिपाटी लोकतन्त्र को कमजोर बनाती है।

अध्यापकों के उग्रवाद का एक सहयोगी तत्व विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्रों की उमडती भीड भी है। जिस गति से उच्च शिक्षा का विस्तार हो रहा है उस के अनुरूप जितने योग्य अध्यापकों की आवश्यकता है उतने योग्य अध्यापक उपलब्ध कराना सम्भव नही हो सकता। अतः अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति करनी ही पडेगी। इस समस्या से निबटने के लिये राजनैतिक दलों को एक साथ बैठकर यह निर्णय लेना होगा कि उच्च शिक्षा सब के लिये खुली नही होगी। यदि हाईस्कूल एवं इण्टर स्तर पर ही सभी सेवाओं के लिये चयन कर लिया जाये तो छात्र स्वयं ही आगे पढने और अपने धन एवं शक्ति की बरबादी करना नही चाहेंगे। आई. ए. एस. जैसी सेवाओं के लिये भी इण्टर स्तर पर ही योग्य छात्रों का चयन करके उसके पश्चात् उन्हें तीन चार वर्ष तक विशिष्ट ट्रेनिंग ऐकाडेमी में रखकर उनकी वांछनीय स्तर की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये। सभी सेवाओं के लिये यह व्यवस्था की जा सकती है। इससे विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की भीड कम होगी। योग्य अध्यापकों की उपलब्धता बढेगी। अध्ययन–अध्यापन में रूचि, समर्पण, निष्ठा एवं गम्भीरता बढेगी। तब अध्यापकों का उग्रवाद भी स्वतः समाप्त हो जायेगा। समर्पित अध्यापक उग्रवाद के रास्ते पर कभी नही जायेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. सेठी, जे.डी., द क्राइसिस एण्ड कोलेप्स आफ एजूकेशन इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1993।
2. वेंकटय्या, एन, रोल एण्ड रेस्पांसिबिलिटी आफ टीचर्स, यूनिवर्सिटी न्युज, एसोसियेशन आफ इण्डियन यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली, 19:35, सितम्बर 2, 1991 पृष्ठ–1 ।
3. रिर्पोट आफ द कमेंटी टू इन्क्वायर इन्टू द बर्किग आफ दी सेंट्रल यूनिवर्सिटीज, यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 75 ।
4. कोव्रिन, आ. जी., एजूकेशन इन क्राइसिसः ए सोश्योलौजिकल ऐनालिसिस आफ स्कूल्स एण्ड यूनिवर्सिटीज इन ट्रांजिट, जॉन वाइले एण्ड सन्स, इन्क.न्यूयार्क, 1974, पृष्ठ 257 ।
5. कौशिक एस.एल. ए कम्पैरेटिव स्टडी आफ टीचर्स एसोसियेशनक इन राजस्थान एण्ड नेबरिंग स्टेट्स, इन एम. बी. बुच (एडी.) ए सर्वे आफ रिसर्च इन ऐजूकेशन, एस. एस. यूनिवर्सिटी, बडौदा 1974, पृष्ठ 498 ।

6. शर्मा, ओ. पी. , ए स्टडी आफ इण्टररिलेशनशिप्स एमंग स्टूडेंटस एंक्टिविज्म, टीचर्स मिलिटेंसी, सोशल इकोलौजी एण्ड टीचर्स ऐलीनियेशन इन एफीलियेटिड कालिजिज आफ द यूनिवर्सिटी आफ राजस्थान, पी. एच. डी. थीसिस इन ऐजूकेशन, मेंरठ यूनिवर्सिटी, 1987।
7. जॉन, विलियम, तथा मालविका काल, टीचर्स और प्रीचर्स, द हिन्दूस्तान टाइम्स दैनिक नई दिल्ली, पृ. 1 स्तम्भ–1 दी मेंट्रोपोलिटन, अगस्त 23, 1995।
8. भटनागर, आर. पी. ऐन इन्वेस्टीगेशन इन्टु द मेंनेजमेंट आफ हायर ऐजूकेशन इन उत्तर प्रदेश, अनपब्लिश्ड रिपोर्ट आफ द मेंजर रिसर्च प्रोजेक्ट सेंकशन्ड बाई द यू. जी. सी. दिसम्बर 1988, पृष्ठ 9 ।
9. रानी, सीमा, ए स्टडी आफ परसीब्ड सोश्योपोलिटिकल इकौलौली ऐज ऐ फैक्टर आफ कालिज टीचर्स मिलिटेंसी, मोरेल एण्ड एकैडेमिक ऐलीनियेशन, पी. एच. डी. थीसिस इन ऐजूकेशन, एम. जे. पी. रूहेलखण्ड यूनिवर्सिटी, बरेली, उत्तर प्रदेश